प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः
कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति
मन्यते ॥२७॥

प्रकृतेः – प्रकृति का; क्रियमाणानि – किये जाकर; गुणैः – गुणों के द्वारा; कर्माणि – कर्म; सर्वशः – सभी प्रकार के;अहङ्कार-विमूढ – अहंकार से मोहित; आत्मा – आत्मा; कर्ता – करने

वाला; अहम् – मैं हूँ; इति – इस प्रकार; मन्यते – सोचता है |

Text

जीवात्मा अहंकार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आपको समस्त कर्मों का कर्ता मान बैठता है, जब कि वास्तव में वे प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं

गीता भूषण टीका

यद्यपि दोनों व्यक्ति समान रूप से कर्म में नियोजित होते हैं फिर भी ज्ञानी पुरुष और अज्ञ में इन दो श्लोकों के द्वारा अंतर समझाया गया है |

अज्ञ व्यक्ति मिथ्या अहंकार के कारण ऐसा सोचता है की वह ही अपने कर्मों का करता है | जो अहंकार से मोहित हैं वे सोचते हैं की अपने कर्मों के कर्ता वे हैं |

उन कर्मों का वर्णन किया जा रहा है |
वह सोचता है की लौकिक और वैदिक कर्मों का कर्ता वह है जिसे वास्तविक रूप से भगवान् की माया से उत्पन्न गुणों यथा शरीर,इन्द्रिय और प्राण इत्यादि के द्वारा संपन्न किया जाता और जिनको भगवान् के द्वारा प्रवर्तित किया जाता है अर्थात कर्मान्वित किया जाता है |
इस वाक्य का यह अर्थ समझना चाहिए |

जीवात्मा का शरीर संवित अर्थात ज्ञानमय है और उसमें “मैं” का भाव होता है और वही वास्तविक कर्ता है परन्तु अनादि काल से विषय भोग वासना से आक्रान्त होने के कारण वह प्रकृति के द्वारा आश्लिष्ट हो जाता है जो उसके निकट ही रहती है और जो उसके विभिन्न भोगों का कारण है |

प्रकृति के कार्य मिथ्या अहंकार के कारण वह मोहित हो जाता है ,

स्वविज्ञान शून्य हो जाता है और शरीर आदि में उसकी अहम् बुद्धि हो जाती है | **तब वह सोचता है की जो क्रियाएं भगवान् के द्वारा भौतिक शरीर, इन्द्रियों और प्राण इत्यादि के द्वारा संपन्न की जाती हैं वे केवल उसके द्वारा की जा रही हैं |**

आत्मा का कर्त्तृत्व शरीर, इन्द्रिय और प्राण के द्वारा ही संपादित होता ही जो परमात्मा के द्वारा प्रवर्तित होते हैं | जीव अकेला कर्ता नहीं है| जब

जीव यह सोचता है की अकेला वह ही कर्ता है तो यह मिथ्या अहंकार के कारण उत्पन्न मूढ़ता से होता है |

यह भगवद गीता के 18.14 इत्यादि तीन श्लोकों से समझा जा सकता है |

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्-विधम्

विविधाश् च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् (श्रीमद भगवद गीता 18.14)

कर्म का स्थान (शरीर), कर्ता, विभिन्न इन्द्रियाँ, अनेक प्रकार की चेष्टाएँ तथा परमात्मा - ये पाँच कर्म के कारण हैं।

भगवद गीता के १३.२१ श्लोक कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिर् उच्यते के अनुसार प्रकृति को शरीर और इन्द्रिय के माध्यम से कर्ता कहा है परन्तु प्रकृति को स्वतन्त्र कर्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्ति को स्वीकार करना

होगा की प्रकृति भगवान् के संपर्क से ही क्रियाशील होती है | इसलिए यह आगे बताया जाएगा की भगवान् के **कर्त्तृत्व को कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता |**

नोट: एक मानव के रूप में जीव की स्वेच्छा और उत्तरदायित्व का कभी भी लोप नहीं होता यद्यपि कर्म और इच्छा का प्रभाव होता है परन्तु उसके कर्म प्रकृति के संग से ही संपादित हो सकते हैं जिसे शरीर,इन्द्रिय और प्राण

के द्वारा और भगवान् की अनुमति के द्वारा ही किया जा सकता है| किस प्रकार जीव कर्म और स्वभाव के प्रभाव पर विजय प्राप्त कर सकता है उसको इस अध्याय के अंत में वर्णन किया जाएगा |

Purport

दो व्यक्ति जिनमें से एक कृष्णभावनाभावित है और दूसरा भौतिक चेतना वाला है, समान स्तर पर कार्य करते हुए समान पद पर

प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु उनके पदों में आकाश-पाताल का अन्तर रहता है | भौतिक चेतना वाला व्यक्ति अहंकार के कारण आश्वस्त रहता है कि वही सभी वस्तुओं का कर्ता है | वह यह नहीं जानता कि शरीर की रचना प्रकृति द्वारा हुई है, जो परमेश्वर की अध्यक्षता में कार्य करती है | भौतिकतावादी व्यक्ति यह नहीं जानता कि अन्ततोगत्वा वह कृष्ण के अधीन है | अहंकारवश ऐसा व्यक्ति

हर कार्य को स्वतन्त्र रूप से करने का श्रेय लेना चाहता है और यही है उसके अज्ञान का लक्षण | उसे यह ज्ञान नहीं कि उसके इस स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर की रचना प्रकृति द्वारा भगवान् की अध्यक्षता में की गई है, अतः उसके सारे शारीरिक तथा मानसिक कार्य कृष्णभावनामृत में रहकर कृष्ण की सेवा में तत्पर होने चाहिए | अज्ञानी व्यक्ति यह भूल जाता है कि भगवान् हृषीकेश कहलाते हैं अर्थात् वे शरीर

की इन्द्रियों के स्वामी हैं | इन्द्रियतृप्ति के लिए इन्द्रियों का निरन्तर उपयोग करते रहने से वह अहंकार के कारण वस्तुतः मोहग्रस्त रहता है, जिससे वह कृष्ण के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को भूल जाता है |

तत्त्ववित्तु महाबाहो
गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न
सज्जते ॥२८॥

तत्त्ववित् – परम सत्य को जानने वाला; तु – लेकिन; महाबाहो – हे विशाल भुजाओं वाले; गुण-कर्म – भौतिक प्रभाव के अन्तर्गत कर्म के; विभाग्योः – भेद के; गुणाः – इन्द्रियाँ; गुणेषु – इन्द्रियतृप्ति में; वर्तन्ते – तत्पर रहती हैं; इति –

इस प्रकार; मत्वा – मानकर; न – कभी नहीं; सज्जते – आसक्त होता है |

Text

हे महाबाहो! भक्तिभावमय कर्म तथा सकाम कर्म के भेद को भलीभाँति जानते हुए जो परमसत्य को जानने वाला है, वह कभी भी अपने आपको इन्द्रियों में तथा इन्द्रियतृप्ति में नहीं लगाता |

गीता भूषण टीका

जो व्यक्ति ज्ञानी होता है वह ऐसा नहीं होता | वह जानता है की वह अपनी इन्द्रियों से अलग है और इन्द्रियों के द्वारा संपादित कार्यों से भी अलग है | इस का अर्थ यह है की अपनी वास्तविक स्थिति पर विचार करके वह यह समझता है की वह इन्द्रियों से बने हुए शरीर और उनके कार्यों से भिन्न व्यक्ति है इस कारण से वह तत्त्व वित् होता है |

वह जानता है देवताओं के द्वारा प्रेरित इन्द्रियां, इन्द्रिय विषयों को प्रकाशित करती हैं और वह जानता है की वह इन्द्रिय विषयों से भिन्न है क्योंकि वह विज्ञाननंद स्वरूप है |

वह समानत्व के द्वारा उनसे पहचान नहीं करता है | यह जानते हुए की उन इन्द्रिय विषयों का वह प्रकाशक नहीं है वह उनसे निरासक्त हो जाता है यद्यपि वह आत्मा से आसक्त रहता है |

इस श्लोक में भी यह समझना चाहिए की जीव भी कर्ता है क्योंकि जब यह कहा गया की “ इन्द्रियाँ अपने विषयों से युक्त हो रही हैं यह जानते हुए” तो यह समझावट जीव की ही है|

Purport

तात्पर्य : परम सत्य को जानने वाला भौतिक संगति में अपनी विषम स्थिति को जानता है। वह जानता है कि वह भगवान् कृष्ण का अंश है

और उसका स्थान इस भौतिक सृष्टि में नहीं होना चाहिए। वह अपने वास्तविक स्वरूप को भगवान् के अंश के रूप में जानता है जो सत् चित् आनंद हैं और उसे यह अनुभूति होती रहती है कि "मैं किसी कारण से देहात्मबुद्धि में फंस चुका हूँ।" अपने अस्तित्व की शुद्ध अवस्था में उसे सारे कार्य भगवान् कृष्ण की सेवा में नियोजित करने चाहिए। फलतः वह अपने आपको कृष्णभावनामृत के

कार्यों में लगाता है और भौतिक इन्द्रियों के कार्यों के प्रति स्वभावतः अनासक्त हो जाता है क्योंकि ये परिस्थितिजन्य तथा अस्थायी हैं। वह जानता है कि उसके जीवन की भौतिक दशा भगवान के नियन्त्रण में है, फलतः वह सभी प्रकार के भौतिक बन्धनों से विचलित नहीं होता क्योंकि वह इन्हें भगवत्कृपा मानता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार जो व्यक्ति परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा

तथा श्रीभगवान्-इन तीन विभिन्न रूपों में जानता है वह तत्त्ववित् कहलाता है, क्योंकि वह परमेश्वर के साथ अपने वास्तविक सम्बन्ध को भी जानता है।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते
गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न
विचालयेत् ॥२९॥

प्रकृतेः – प्रकृति के; गुण – गुणों से; सम्मूढाः – भौतिक पहचान से बेवकूफ बने हुए; सज्जन्ते – लग जाते हैं; गुण-कर्मसु – भौतिक कर्मों में; तान् – उन; अकृत्स्नविदः – अल्पज्ञानी पुरुष; मन्दान् – आत्म-साक्षात्कार समझने में आलसियों

को; कृत्स्न-वित्–
ज्ञानी; विचालयेत् – विचलित करने का प्रयत्न करना चाहिए |

Text

माया के गुणों से मोहग्रस्त होने पर अज्ञानी पुरुष पूर्णतया भौतिक कार्यों में संलग्न रहकर उनमें आसक्त हो जाते हैं | यद्यपि उनके ये कार्य उनमें ज्ञानभाव के कारण अधम होते हैं, किन्तु ज्ञानी को चाहिए कि उन्हें विचलित न करे |

गीता भूषण टीका

यह श्लोक, श्लोक २६ में प्रारंभ किये गए विषय का उपसंहार करता है | जो लोग मिथ्या अहंकार से मोहित होते हैं जो प्रकृति का कार्य है और अपने को शरीर मानते हैं जैसे कोई व्यक्ति भूत ग्रस्त हो जाये तो वैसे व्यक्ति शरीर और इन्द्रिय के कार्यों के प्रति आसक्त हो जाते हैं |

जो आत्मा के पूर्ण ज्ञान से युक्त है उसको कम बुद्धि वाले लोगों को, जो आत्मा के ज्ञान में मंद हैं , उनको विचलित नहीं करना चाहिए |

ऐसे ज्ञानी को उन व्यक्तियों को यह कह कर की "तुम विशुद्ध चैतन्यानंद हो" तत्त्व ग्रहण कराने की इच्छा नहीं करने चाहिए | अपितु उनकी रुचि के अनुसार उन्हें वैदिक कर्मों में नियोजित करना चाहिए |

नोट : जो अपने पहचान शरीर से करता है, आत्मा से नहीं वह एक भूत ग्रस्त व्यक्ति के समान है जो अपने अन्दर प्रवेशित भूत से अपनी पहचान करता है और उसके अनुसार कार्य करता है |

Purport

अज्ञानी पुरुष स्थूल भौतिक चेतना से और भौतिक उपाधियों से पूर्ण रहते हैं | यः शरीर प्रकृति की देन है और जो व्यक्ति शारीरिक चेतना में अत्यधिक

आसक्त होता है वह मन्द अर्थात् आलसी कहा जाता है | अज्ञानी मनुष्य शरीर को आत्मस्वरूप मानते हैं, वे अन्यों के साथ शारीरिक सम्बन्ध को बन्धुत्व मानते हैं, जिस देश में यह शरीर प्राप्त हुआ है उसे वे पूज्य मानते हैं और वे धार्मिक अनुष्ठानों की औपचारिकताओं को ही अपना लक्ष्य मानते हैं | ऐसे भौतिक्ताग्रस्त अपाधिकारी पुरुषों के कुछ प्रकार के कार्यों में सामाजिक

सेवा, राष्ट्रीयता तथा परोपकार हैं | ऐसी उपाधियों के चक्कर में वे सदैव भौतिक क्षेत्र में व्यस्त रहते हैं, उनके लिए आध्यात्मिक बोध मिथ्या है, अतः वे इसमें रूचि नहीं लेते | किन्तु जो लोग आध्यात्मिक जीवन में जागरूक हैं, उन्हें चाहिए कि इस तरह भौतिकता में मग्न व्यक्तियों को विचलित न करें | अच्छा तो यही होगा कि वे शान्तभाव से अपने आध्यात्मिक कार्यों को करें | ऐसे

मोहग्रस्त व्यक्ति अहिंसा जैसे जीवन के मूलभूत नैतिक सिद्धान्त तथा इसी प्रकार के परोपकारी कार्यों में लगे हो सकते हैं |

जो लोग अज्ञानी हैं वे कृष्णभावनामृत के कार्यों को समझ नहीं पाते, अतः भगवान् कृष्ण हमें उपदेश देते हैं कि ऐसे लोगों को विचलित न किया जाय और व्यर्थ ही मूल्यवान समय नष्ट न किया जाय | किन्तु भगवद्भक्त भगवान् से भी

अधिक दयालु होते हैं, क्योंकि वे भगवान् के अभिप्राय को समझते हैं | फलतः वे सभी प्रकार के संकट झेलते हैं, यहाँ तक कि वे इन अज्ञानी पुरुषों के पास जा-जा कर उन्हें कृष्णभावनामृत के कार्यों में प्रवृत्त करने का प्रयास करते हैं, जो मानव के लिए आवश्यक है |